यदि व्यक्ति उस शीतल स्पर्श का अनुमोदन करता है, तो उसे आशीविष लब्धि प्राप्त होती है अर्थात् उसकी दाढ़ में सांप के विष से भी अधिक उग्र विष प्रकट होता है और जो उन स्पर्शक देवों का अनुमोदन नहीं करता, उसके शरीर में अग्निकाय की उत्पत्ति होती है। उस अग्नि से अपने शरीर को जलाकर वह उसी भव में सब दुःखों का अन्त करके संसार से मुक्त हो जाता है। उक्त देव के जल भीगे हाथ का शीतल स्पर्श ही 'शुद्ध जल' कहलाता है।

अयंपुल! अपने धर्माचार्य ने उर्पयुक्त आठ चरम, चार पेय जलों और चार अपेय जलों की प्ररूपणा की है। इस वास्ते वे जो नाच, गान, पान, अञ्जलिकर्म और शरीर पर मृत्तिका जल सींचते हैं, वह सब ठीक है। ये कार्य अन्तिम तीर्थंकर के अवश्य कर्त्तव्य हैं। इनमें कुछ भी अनुचित नहीं। आर्य अयंपुल! खुशी से अपने धर्माचार्य के पास जाइए और प्रश्न पूछकर अपनी शंका की निवृत्ति कीजिए।

आजीवक भिक्षुओं ने अयंपुल के मन का समाधान कर उसे गोशालक की तरफ भेजा और उसके वहां पहुंचने के पहले ही दूसरे रास्ते से अंदर जाकर गोशालक को उन्होंने सावधान रहने और अमुक प्रश्न का उत्तर देने का इशारा कर दिया।

अयंपुल गोशालक के पास अंदर आया और तीन बार प्रदक्षिणापूर्वक वन्दन नमस्कार करके उचित स्थान पर बैठ गया। वह अभी प्रश्न पूछ ही नहीं पाया था कि गोशालक ने उसकी शंका को प्रकट करते हुए कहा- "अयंपुल! आज पिछली रात को कुटुम्ब चिन्ता करते हुए तुझे हल्ला के संस्थान के विषय में शंका उत्पन्न हुई और उसका समाधान करने के लिए तू यहां आया। क्यों यह ठीक है?"

अयंपुल ने हाथ जोड़कर कहा- "जी हां, मेरे अभी यहां आने का यही प्रयोजन है।"

"परन्तु यह आम की गुठली नहीं, उसकी छाल है..... क्या कहा-हल्ला का संस्थान कैसा होता है? हल्ला का संस्थान बांस के मूल-जैसा होता है।..... बीन बजा! अरे वीरका! बीन बजा!"

मदिरा के नशे और दाह ज्वर की पीड़ा से विकल गोशालक अयंपुल को उत्तर देता हुआ, इस प्रकार असंबद्ध प्रलाप कर रहा था, तो भी श्रद्धालु अयंपुल पर उसका कुछ भी विपरीत प्रभाव नहीं हुआ। वह अपने धर्माचार्य के उत्तर से संतुष्ट होकर तथा अन्य भी कतिपय प्रश्न पूछकर उनके उत्तरों से आनन्दित होकर अपने घर गया।

गोशालक की अन्तिम अवस्था

गोशालक की शक्ति प्रतिक्षण क्षीण हो रही थी इससे, और 'तू स्वयं पित्त-ज्वर की पीड़ा से सात दिन के भीतर छद्मस्थावस्था में मृत्यु को प्राप्त होगा' इस महावीर की भविष्यवाणी के स्मरण से, गोशालक को निश्चय हो गया कि अब उसकी जीवन लीला समाप्त होने को है। उसने अपने शिष्यों को पास बुलाकर कहा- "भिक्षुओं! मेरे प्राण- त्याग के बाद मेरे इस शरीर को सुगंधित जल से नहलाना, सुगंधित कषाय-वस्त्र से पोंछना और गोशीर्ष चन्दन के रस से विलेपन करना। फिर इसे श्वेत वस्त्र से ढककर हजार पुरुषों से उठाने योग्य पालकी में रखकर श्रावस्ती के मुख्य-मुख्य सब चौक बाजारों में फिराना और ऊंचे स्वर से उद्घोषित करना कि इस अवसर्पिणी काल के अन्तिम जिन, कर्म खपाकर मुक्त हो गए।"

गोशालक की उक्त आज्ञा को आजीवक स्थविरों ने विनय के साथ सिर पर चढ़ाया।

मंखलिपुत्र गोशालक द्वारा अपनी भूल का अहसास

गोशालक की बीमारी का सातवां दिन था। उसका शरीर काफी कमजोर हो गया था पर विचार-शक्ति तब तक लुप्त नहीं हुई थी। वह सोता था, पर उसके हृदय में जीवन के भले-बुरे प्रसंगों की स्मृति चक्कर काट रही थी। अपना मंखजीवन, महावीर के पीछे पड़कर उनका शिष्य होना, कई बार उसके प्रति बताया हुआ दयाभाव इत्यादि बातें उसके हृदय में ताजी हो रही थीं। साथ ही अपने मुख से की गई महावीर की बुराइयां क्रोधवश की हुई सर्वानुभूति और सुनक्षत्र मुनि की हत्या और महावीर पर तेजलेश्या छोड़ना इत्यादि कृतघ्नतासूचक प्रवृत्तियां भी स्मृति-पट पर ताजी होकर उसके चित्त को आकुल कर रही थीं। पहले केवल शरीर में ही जलन थी, पर अब तो उसका मन भी पश्चाताप की आग में जलने लगा। क्षणभर उसने नीरव और निश्चेष्ट होकर हृदयमन्थन किया, फिर अपने शिष्यों को पास बुलाकर कहा- ''भिक्षुओ! मैं तुम्हें एक कार्य की सूचना देना चाहता हूं, क्या तुम उस पर अमल करोगे?''

स्थविर- ''अवश्य, आपकी बातों पर अमल करना हमारा सर्वप्रथम कर्त्तव्य है।''

मंखलिपुत्र गोशालक- ''हे आर्य! मेरी आज्ञा मानने में तुमने कभी आनाकानी नहीं की, फिर भी मेरे विश्वास के लिए शपथपूर्वक कहो कि मेरा कहना मानोगे।''

स्थविर- ''हम शपथबद्ध होकर कहते हैं कि आपकी आज्ञा का अक्षरशः पालन करेंगे।''

गोशालक- ''भिक्षुओ! मैं बड़ा पापी हूं। मैंने तुम्हें ठगा है। मैंने संसार को भी ठगा है। मैं जिन न होते हुए भी जिन और सर्वज्ञ के नाम से पुजाता रहा हूं, यह मेरा दंभ था। मैं श्रमणघातक तथा अपने धर्माचार्य की अपकीर्ति करने वाला हूं। अब मैं मृत्यु के समीप हूं, कुछ क्षणों में मर जाऊंगा। अब मेरे मरने के बाद तुम्हारा जो कर्त्तव्य है उसे सुनो-जब मैं मर जाऊं तो मेरे शव के बाएं पांव में मूंज की रस्सी बांधकर मुख में तीन बार थूकना, फिर उसे खींचते हुए श्रावस्ती के सब चौंक, बाजारों में घुमाना और साथ साथ उच्च स्वर में उद्घोषित करना- यह मंखलि गोशालक मर गया! जिन न होने पर भी जिन होने का ढोंग करने वाला, श्रमणघातक, गुरूद्रोही गोशालक मर गया।'

भिक्षुओ! यही मेरा अन्तिम आदेश है जिसके पालन के लिए तुम शपथबद्ध हुए हो। इसका पालन करना। मेरी आत्म-शान्ति के लिऐ इस पर अमल करना।''

पश्चात्ताप की आग में अशुभ कर्मों को जलाकर गोशालक की आत्मा शुद्ध हो गई। सम्यक्त्व की प्राप्ति के साथ देह छोड़कर वह अच्युत देवलोक में देवपद को प्राप्त हुआ।

गोशालक का अन्तिम संस्कार

आजीवक स्थविरों के लिए गोशालक के मरण से भी उसके अन्तिम आदेश का पालन करना अधिक दुःखदायक था। इसके पालन में गोशालक के साथ उनका अपना अपमान था, पर शपथबद्ध होने के कारण वे इस बात का अनादर भी नहीं कर सकते थे। खूब सोच-विचार के बाद उन्होंने शपथ-मोक्ष का उपाय खोज निकाला। तुरंत हालाहला की भाण्डशाला का द्वार बन्द किया और चौक के मध्य में श्रावस्ती की एक विस्तृत नक्शे के रूप में रचना की। बाद में गोशालक के आदेशानुसार उसके शव को उस कल्पित श्रावस्ती में सर्वत्र फिराया और अतिमन्द स्वर में उस प्रकार की उद्घोषणा भी कर दी।

इस प्रकार आजीवक स्थविरों ने अपने धर्माचार्य के आदेश का पालन का नाटक खेला। फिर शव को नहलाकर चन्दन-विलेपनपूर्वक उज्वल वस्त्र से ढककर पालकी में रखा और सारी श्रावस्ती में फिराकर उसका उचित संस्कार किया।[11]

श्रमण भगवान महावीर की बीमारी व सिंह अनगार

गोशालक के देहान्त के बाद भगवान महावीर श्रावस्ती के कोष्ठक चैत्य से विहार करते हुए मेंढिक गांव के बाहर सालकोष्ठक चैत्य में पधारे। भगवान महावीर का आगमन सुनकर श्रद्धालु जन वन्दन और धर्मश्रवण के लिए सम्मिलित हुए। भगवान महावीर ने धर्मदेशना दी जिसे सुनकर सभा विसर्जित हुई।

मंखलि गोशालक ने श्रावस्ती के उद्यान में भगवान महावीर पर जो तेजोलेश्या छोड़ी थी उससे यद्यपि तात्कालिक हानि नहीं हुई थी, पर उसकी प्रचण्ड ज्वालाएं अपना थोड़ा-सा प्रभाव उन पर कर ही गई। उसके ताप से आपके शरीर में पित्त-ज्वर हो गया था। जिस समय आप मेंढिक ग्राम में विराजे थे, गोशालक घटना को छह महीने होने आए थे। तब तक पित्त-ज्वर और खून के दस्ते से भगवान महावीर का शरीर काफी शिथिल और कृश हो गया था। भगवान महावीर की यह दशा देखकर वहां से वापस जाते हुऐ नगरवासी आपस में बातें कर रहे थे- "भगवान का शरीर क्षीण हो रहा है, कहीं गोशालक की भविष्यवाणी सत्य न हो जाए?"

सालकोष्ठक चैत्य के पास मालुकाकच्छ में ध्यान करते हुए भगवान के शिष्य 'सिंह' अनगार ने उक्त लोक-चर्चा सुनी। छट्ठ-छट्ठ तप और धूप में आतापना करने वाले महातपस्वी सिंह अनगार का ध्यान टूट गया। वे सोचने लगे- 'भगवान को करीब छह महीने हुए पित्त-ज्वर हुआ है। साथ में खून के दस्त भी हो रहे हैं। शरीर बिल्कुल कृश हो गया है। क्या सचमुच ही गोशालक का भविष्य-कथन सत्य होगा? यदि ऐसा ही हुआ तो मेरे धर्मोपदेशक धर्माचार्य श्रमण भगवान महावीर के संबंध में संसार क्या कहेगा?' इत्यादि विचार करते करते उनका दिल हिल गया। उन्होंने तपोभूमि से प्रस्थान किया और कच्छ के मध्य भाग में आते आते रो पड़े, वहीं खड़े खड़े फूट फूटकर रोने लगे।

भगवान महावीर ने अनगार सिंह का रोना और उसका कारण जान लिया। अपने शिष्यों को संबोधन करते हुए महावीर ने कहा- "आर्यो! सुनते हो। मेरा शिष्य सिंह मेरे रोग की चिन्ता से मालुकाकच्छ में रो रहा है। श्रमणो! तुम जाओ और अनगार सिंह को मेरे पास बुला लाओ।"

भगवान महावीर का आदेश पाते ही श्रमण निर्ग्रन्थों ने सिंह के पास जाकर कहा- "चलो सिंह! तुम्हें धर्माचार्य बुलाते हैं।"

श्रमणो के साथ सिंह अणगार सालकोष्ठक चैत्य की तरफ चले और आकर भगवान महावीर को त्रिप्रदक्षिणापूर्वक वन्दन-नमस्कार कर हाथ जोड़कर उनके सामने खड़े हुए।

सिंह अणगार के मानसिक दुःख का कारण प्रकट करते हुऐ भगवान बोले- "वत्स सिंह! मेरे अनिष्ट भावी की चिन्ता से तू रो पड़ा।"

सिंह- "भगवन्! बहुत समय से आपकी तबियत अच्छी नहीं रहती, इससे और गोशालक की बात के स्मरण से मेरा चित्त उचट गया।"

महावीर- "वत्स! इस विषय में तुम्हें कुछ भी चिन्ता नहीं करनी चाहिए। मैं अभी साढ़े पंद्रह वर्ष तक सुखपूर्वक इस भूमण्डल पर विचरूंगा।"

सिंह- "भगवन्! आपका वचन सत्य हो। हम यही चाहते हैं, परन्तु भगवन्! आपका शरीर प्रतिदिन क्षीण होता जाता है यह बड़े दुःख की बात है। क्या इस बीमारी को हटाने का कोई उपाय नहीं?"

महावीर- "आर्य! तेरी यही इच्छा है तो तू मेंढ़िय गांव में रेवती गाथापतिनी के यहां जा। उसके घर कुम्हड़े और बीजोरे से बनी हुई दो औषधियां तैयार हैं। इनमें पहली जो हमारे लिए बनाई गई है, उसकी

जरूरत नहीं। दूसरी जो रेवती ने अन्य प्रयोजनवश बनाई है वह इस रोग निवृत्ति के लिए उपयुक्त है, उसे ले आ।''

भगवान महावीर की आज्ञा पाकर सिंह बहुत प्रसन्न हुए। भगवान महावीर को वन्दन कर वे मेंढिक ग्राम में रेवती के घर पहुंचे। मुनि को आते देखकर रेवती सात-आठ कदम आगे गई और सविनय वन्दन कर बोली- ''पूज्य! किस निमित्त आना हुआ? कहिए, क्या आज्ञा है?''

सिंह अणगार ने कहा- ''गाथापतिनी! तुम्हारे यहां जो दो औषधियां हैं, जिनमें एक भगवान महावीर के लिए बनाई हुई है, उसकी आवश्यकता नहीं है। जो तुमने अन्य उद्देश्य से बीजोरे से औषधि तैयार की है, उसकी आवश्यकता है। उसके लिए मैं आया हूं।''

आश्चर्यचकित होकर रेवती बोली- ''मुनि! तुम्हें किस ज्ञानी या तपस्वी ने मेरे इस गुप्त कार्य का भेद कहा? मेरे यहां अमुक औषधियां हैं और अमुक-अमुक उद्देश्य से बनाई गई हैं, यह रहस्य तुमने किसके कहने से जाना?''

सिंह ने उत्तर दिया- ''श्राविके! यह रहस्य मैं भगवान महावीर के कहने से जानता हूं। भगवान महावीर ने ही इसके लिए मुझे यहां भेजा है।''

अनगार सिंह की बात से रेवती को बड़ी प्रसन्नता हुई। वह अपने रसोईघर में गई और बीजोरा-पाक लाकर मुनि के पात्र में रख दिया। इस शुभ दान और शुभ भाव से रेवती का मनुष्य-जन्म सफल हो गया। उसने शुभाध्यवसाय से देवगति का आयुष्य बांधा और भविष्य में वह तीर्थंकर बनेगी।

रेवती के घर से लाए हुए औषधमिश्र आहार के सेवन से भगवान के पित्त ज्वर और रक्तातिसार की पीड़ा बन्द हो गई। धीरे-धीरे उनका शरीर पहले की तरह तेजस्वी होकर चमकने लगा।

भगवान महावीर की रोग-निवृत्ति से सबको आनन्द हुआ। साधु-साध्वियां और श्रावक-श्राविकाएं ही नहीं, स्वर्ग के देव तक भगवान की नीरोगता से परम संतुष्ट हुए।[5]

जमालि का विद्रोह

इधर प्रभु महावीर की आज्ञा के बिना स्वतंत्र होकर विचरता हुआ जमालि एक समय श्रावस्ती गया और तिन्दुकोद्यान में ठहरा। उस समय जमालि पित्त-ज्वर से पीड़ित था। साधु उसके लिए बिस्तर बिछा रहे थे। जमालि ने पूछा- ''संथारा (बिस्तर) हो गया?''

साधुओं ने कहा- ''हो गया।'' इस पर जमालि सोने के लिए उठा, पर संथारा (बिस्तर) अभी तक पूरा नहीं हुआ था। निर्बलता के कारण जमालि को खड़ा रहना कठिन हो गया था। उसने झुंझलाकर कहा- **'करेमाणे कडे'** (किया जाने लगा सो किया) ऐसा सिद्धान्त है, पर मैं देख रहा हूं कि 'करेमाणे कडे' का कोई मतलब नहीं। कोई भी कार्य जब पूरा हो जाता है, तभी कार्य-साधक हो साधक हो सकता है। अतः उसी अवस्था में 'कडे' (किया) कहना चाहिए।

जमालि का यह तर्क कई साधुओं ने ठीक समझा। तब कई स्थविरों ने इसका विरोध भी किया। उन्होंने कहा- भगवान महावीर का **'करेमाणे कडे'** यह कथन निश्चयनय की अपेक्षा ही सत्य है। निश्चयनय क्रियाकाल और निष्ठाकाल को अभिन्न मानता है। इसके मत से कोई भी क्रिया अपने समय में कुछ भी कार्य करके ही निवृत्त होती है। तात्पर्य इसका यह है कि यदि क्रियाकाल में कार्य न होगा तो उसकी निवृत्ति के बाद वह किस कारण से होगा? इसलिए निश्चयनय का यह सिद्धान्त तर्कसंगत है और इसी निश्चयात्मक नय को लक्ष्य में रखकर भगवान का 'करेमाणे कडे' यह कथन हुआ है जो

तार्किक दृष्टि से बिल्कुल ठीक है। दूसरी भी अनेक युक्तियों से स्थविरों ने जमालि को समझाया पर वह अपने हठ पर अड़ा रहा। परिणामस्वरूप बहुतेरे समझदार स्थविर श्रमण उसको छोड़कर भगवान महावीर के पास चले आए।

स्वस्थ होने पर जमालि ने श्रावस्ती से विहार कर दिया, पर उसने जो नया तर्क स्थपित किया था जिसकी चर्चा हर जगह करता रहता।

एक समय भगवान महावीर चम्पानगरी के पूर्णभद्र चैत्य में ठहरे हुए थे। जमालि भगवान महावीर के आवास स्थान पर आया और उनसे कुछ दूर खड़ा होकर बोला- ''देवानुप्रिय! आपके बहुतेरे शिष्य जिस प्रकार छद्मस्थ विहार से विचरे हैं, वैसा आप मेरे संबंध में न समझें। मैं केवली-विहार से विचर रहा हूं।'

जमालि का उक्त आत्म-श्लाघात्मक भाषण सुनकर महावीर के ज्येष्ठ शिष्य इन्द्रभूति उसे संबोधन कर बोले- ''जमालि! केवलज्ञान, केवलदर्शन को तूने क्या समझ रखा है? केवलज्ञान और केवलदर्शन यह ज्योति है जो लोक और अलोक तक अपना प्रकाश फैलाती है, जिसका सर्वव्यापक प्रकाश नदी, समुद्र और गगनभेदी पर्वतमालाओं से भी स्खलित नहीं होता, जिस प्रकाश के आगे अंधेरी गुफाएं और तमस् क्षेत्र भी करामलकवत् प्रकाशित होते हैं। महानुभाव जमालि! जिसमें इस दिव्य ज्योति का प्रादुर्भाव होता है वह आत्मा छिपी नहीं रहती। तू केवली है या नहीं इस संबंध में अधिक चर्चा करना निरर्थक समझता हूं। मैं सिर्फ दो प्रश्न पूछता हूं इनका उत्तर दे- (१) लोक शाश्वत है या अशाश्वत? और (२) जीव शाश्वत है या अशाश्वत?''

इन्द्रभूति गौतम के उक्त प्रश्नों का जमालि ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। इस पर भगवान महावीर ने कहा- ''जमालि! मेरे बहुतेरे ऐसे शिष्य हैं, जो छद्मस्थ होते हुए भी इन प्रश्नों के यथार्थ उत्तर देने में समर्थ हैं, तथापि वे केवली होने का दावा नहीं करते। देवानुप्रिय! केवलज्ञान कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिसका अस्तित्व बताने के लिए केवली को अपने मुख से घोषणा करनी पड़े।''

''जमालि! लोक 'शाश्वत' है, क्योंकि यह अनन्तकाल पहले भी था, अब है और भविष्य में रहेगा।'

अन्य अपेक्षा से लोक अशाश्वत भी है। कालस्वरूप से वह उत्सर्पिणी मिटकर अवसर्पिणी बनता है और अवसर्पिणी मिटकर उत्सर्पिणी। इसी प्रकार अन्य जो लोकात्मक द्रव्य हैं उनमें अथवा उनके अवयवों में पर्याय परिवर्तन (आकार परावर्तन) होता ही रहता है। इस वास्ते लोक को 'अशाश्वत' भी कह सकते हैं।

इसी तरह जीव भी शाश्वत है और अशाश्वत भी। शाश्वत इसलिए कि उसका अस्तित्व त्रिकालवर्ती है और अशाश्वत इसलिए कि पर्यायरूप से वह सदाकाल एक-सा नहीं रहता। कभी वह नारकरूप धारण करता है तो कभी तिर्यक् बनता है, कभी वह मनुष्य बनता है और कभी देव। इस प्रकार अनेक पर्यायों के उत्पाद और व्यय की अपेक्षा से जीव 'अशाश्वत' है।''

जमालि को पूछे गए गौतम के प्रश्नों का स्पष्टीकरण करके भगवान महावीर ने बहुत समझाया, पर उसने अपना कदाग्रह नहीं छोड़ा। वह चला गया और दुराग्रहवश अनेक मिथ्या बातों को बहकाता और अपने मतवाद में मिलाता हुआ विचरता रहा।

जमालि के ५०० साधुओं में से कतिपय साधु और प्रियदर्शना प्रमुख १,००० साध्वियां भी जमालि के पंथ में मिल गई थीं।

साध्वी प्रियदर्शना का सम्बन्ध विच्छेद

एक समय प्रियदर्शना अपने साध्वी परिवार के साथ विहार करती हुई श्रावस्ती पहुंची और ढंक कुम्हार की भाण्डशाला में ठहरीं। ढंक भगवान महावीर का भक्त-श्रावक था। जमालि के मतभेद से वह पहले ही परिचित था। प्रियदर्शना जमालि का मत मानने वाली है, यह भी उसे मालूम था। जमालि तथा उसके अनुयायी किसी तरह समझें और भगवान महावीर के साथ जो विरोध खड़ा किया है उसे मिटा दें, यह ढंक की उत्कृष्ट इच्छा थी। इसी विषय को लक्ष्य में रखकर उसने प्रियदर्शना की संघाटी (चादर) पर अग्निकण फेंका। संघाटी जलने लगी, जिसे देखकर प्रियदर्शना बोल उठी- "आर्य! यह क्या किया, मेरी संघाटी जला दी?"

ढंक ने कहा- "संघाटी जली नहीं, अभी जल रही है। जलते हुए को 'जला' कहना यह भगवान महावीर का मत है। तुम्हारा मत जले हुए को 'जला' कहने का है, फिर तुमने जलती संघाटी को 'जली' कैसे कहा?"

ढंक की इस युक्ति से प्रियदर्शना समझ गई, बोली- "आर्य! तूने अच्छा बोध दिया।" प्रियदर्शना साध्वी ने उसी समय जमालि का मत छोड़कर अपने शिष्या परिवार के साथ भगवान महावीर के संघ में प्रवेश किया।

जमालि के साथ जो साधु रहे थे, वे भी धीरे-धीरे उसे छोड़कर महावीर के श्रमणसंघ में मिल गए फिर भी जमालि अपने हठाग्रह से पीछे नहीं हटा। जहां जाता, वहीं अपने मतवाद का प्रचार करता और भगवान महावीर के विरुद्ध लोगों को बहकाता। बहुत वर्षों तक श्रमणधर्म पालने के उपरान्त जमालि ने अनशन किया और पन्द्रह दिन तक निराहार रह देह छोड़ा और लान्तक देवलोक में किल्विष जाति का देव हुआ।

मेंढिय ग्राम से विहार करते हुए भगवान महावीर मिथिला पहुंचे और वर्षावास मिथिला में ही किया। चातुर्मास पूरा होते ही भगवान महावीर ने मिथिला से पश्चिम के जनपदों की तरफ विहार कर दिया।

महाशिलाकंटक युद्ध

जैसे हिन्दू धर्म में महाभारत के युद्ध का वर्णन मिलता है उसी प्रकार जैन इतिहास में प्रसिद्ध महाशिलाकंटक युद्ध का वर्णन भगवती और निरयावलिका सूत्रों में मिलता है। यह युद्ध कई वर्ष चला। युद्ध की भूमिका का कुछ वर्णन हम पीछे कर आए हैं। इस युद्ध में राजा श्रेणिक के कालकुमार आदि पुत्र मारे गए थे। बहुत विशाल सेना, ३३ हजार हाथी, ३३ हजार घोड़े व ३३ हजार रथ कोणिक राजा व भाईयो के इस सेना का अंग थे।

राजा चेटक ने भी खूब तैयारी कर ली थी। राजा चेटक की सेना में मनुष्यों के अतिरिक्त ५७ हजार हाथी, ५७ हजार घोड़े, ५७ हजार रथ थे। चेटक ने श्रावक के १२ व्रत अंगीकार किए थे। उसने एक नियम यह भी ले रखा था कि एक दिन में एक बाण से ज्यादा बाण नहीं चलाऊंगा, उसका बाण निष्फल नहीं जाता था।

प्रथम दिन अजातशत्रु कूणिक ने गरुड़ व्यूह रचना की। इसमें कालकुमार मारा गया था।

राजा चेटक ने शकट व्यूह रचना की थी। भयंकर युद्ध हुआ था। एक-एक करके उसके नौ भाई मर चुके थे। इनकी माताएं व पत्नियां साध्वी बन चुकी थीं।

इन्द्र द्वारा सहायता

वैशाली महायुद्ध का कोई परिणाम सामने नहीं आ रहा था। युद्ध में अपनी पराजय देखकर राजा कोणिक ने तीन दिन का उपवास किया। उसने शक्रेन्द्र व चमरेन्द्र की आराधना की। वे प्रकट हुए।

उन्होंने पहले दिन महाशिलाकंटक संग्राम योजना बनायी। शक्रेन्द्र द्वारा निर्मित अभेद्य व छह व्रज प्रतिरूप कवच को कोणिक ने धारण किया।[५७] वह युद्ध में आया। राजा चेटक का अमोघ बाण अब काम न आ सका। घमासान युद्ध हो रहा था। कूणिक की सेना के द्वारा राजा चेटक की सेना पर कंकड़, तृण, पत्र आदि कुछ भी डाला जाता, वह महाशिला की तरह प्रहार करता।[५८]

पहले दिन ८४ लाख योद्धा मारे गए। द्वितीय दिन रथमूसल की विकुर्वणा की गई। देव निर्मित रथ पर चमरेन्द्र स्वयं आसीन हुआ। वह मूसल से चारों तरफ प्रहार करने लगा।[५९] दूसरे दिन भी लाखों मनुष्य मारे गए।

इस युद्ध में राजा चेटक नौ मल, नौ लिच्छवी, काशी कोशल के गणराजाओं की पराजय हुई। कोणिक ने विजय ध्वजा फहरा दी।[६०]

राजा चेटक पराजित होकर वैशाली में चला गया। महल के द्वार बंद कर दिए। कोणिक किसी भी तरह इन कपाटों को तोड़ न सका। तभी आकाशवाणी हुई- "श्रमण कूलबालक,[६१] जब मागधिका वेश्या से अनुरक्त होगा, तब राजा अशोक चन्द्र कूणिक वैशाली को अधिग्रहण करेगा। कूणिक ने कूलबालक साधु व मागधिका की वेश्या को बुलाया। मागधिका ने श्राविका का वेश बनाया और कूलबालक मुनि को अपने जाल में फंसा लिया।

कूलबालक नैमित्तिक का वेश धारण कर किसी तरह वैशाली पहुंचा। उसे पता था कि जब तक वैशाली में मुनिसुव्रत स्वामी का स्तूप विद्यमान है, इस नगरी का कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता।

नागरिकों ने शत्रु संकट का उपाय पूछा। नैमित्तिक बने मुनि ने कहा- जब तक यह स्तूप नहीं तोड़ा जाएगा, शत्रु नहीं हटेगा। लोगों ने स्तूप को तोड़ डाला। स्तूप टूटते ही कूणिक ने वैशाली पर आक्रमण कर वैशाली को नष्ट कर दिया।"[६२]

हार हाथी को लेकर हल्ल और विहल्ल शत्रु से बचने के लिए वैशाली से भागे। प्राकार की खाई में आग लगी थी। हाथी सेचनक को विभंगज्ञान हुआ था जिस कारण वह आगे न बढ़ा। जब उसे आगे बढ़ाने की कोशिश की गई, तो उसने अपनी सूंड से हल्ल-विहल्ल को नीचे उतार दिया। सेचनक हाथी ने उस अग्नि में स्वयं प्रवेश कर लिया था। शुभ अध्यवसाय से आयु पूर्ण कर वह हाथी प्रथम देवलोक में उत्पन्न हुआ।

देव-प्रदत्त हार को देवताओं ने ग्रहण कर लिया। शासन देव ने अपनी शक्ति से हल्ल विहल्ल को भगवान महावीर के पास मिथिला में पहुंचा दिया। प्रभु महावीर का उपदेश सुनकर उन दोनों को वैराग्य हो गया। वह प्रभु महावीर के शिष्य बन गए।[६३]

इस संग्राम का वर्णन प्रभु महावीर ने स्वयं भगवतीसूत्र में करते हुए एक प्रश्न का स्पष्टीकरण किया है। वह प्रश्न है कि क्या युद्ध में मरने वाले सभी स्वर्ग में जाते हैं?

प्रभु महावीर का उत्तर था- सभी युद्ध में मरने वाले स्वर्ग या नरक में नहीं जाते। स्वर्ग-नरक हर व्यक्ति के किए कर्म के फलानुसार प्राप्त होता है, युद्ध में मरने का इससे कोई संबंध नहीं है।

अट्ठाईसवां वर्ष

भगवान कोशल भूमि में विचरते हुए पश्चिम की ओर धीरे धीरे आगे बढ़ रहे थे। इसी बीच में

इन्द्रभूति गौतम अपने शिष्यगण के साथ आगे बिकलकर श्रावस्ती के कोष्टक चैत्य में जा ठहरे।[४]

उन दिनों पार्श्वापत्य केशीकुमार श्रमण भी अपने शिष्यगण सहित श्रावस्ती के तिन्दुकोद्यान में आए हुए थे।

दोनों स्थविरों के शिष्य एक-दूसरे समुदाय में आचार-भिन्नता देखकर सोचने लगे-'यह धर्म कैसा और वह कैसा? यह आचार-व्यवस्था कैसी और वह कैसी? महामुनि पार्श्वनाथ का धर्म चातुर्मास और वर्धमान का पंचशिक्षात्मक, एक धर्म सचेलक और दूसरा अचेलक? मोक्ष-प्राप्तिरूप एक ही कार्य की साधना में प्रवृत्त होने वालों के धर्म तथा आचार मार्ग में इस प्रकार विभेद होने का क्या कारण होगा? अपने शिष्यगणों में चर्चास्पद बनी हुई बातें केशी और गौतम ने सुनीं और परस्पर मिलकर इनका समाधान करने का उन्होंने निश्चय किया।

गौतम ने यह समझकर कि कुमार श्रमण केशी वृद्ध कुल के पुरुष हैं, अपने शिष्य समुदाय के साथ केशी के स्थान पर तिन्दुकोद्यान में गए। केशी ने गौतम का उचित आदर किया। कुश-आसन आदि देकर बैठने का इशारा किया। गौतम बैठे। दोनों स्थविर सूर्य और चन्द्र की तरह शोभायमान होने लगे।

तीर्थंकर पार्श्वनाथ और वर्धमान के श्रमणों का यह सम्मेलन एक अभूतपूर्व घटना थी। इसे देखने और संवाद सुनने के लिए अनेक अन्यतीर्थिक साधु और हजारों गृहस्थ लोग वहां एकत्र हुए।

केशी ने कहा- "महाभाग गौतम! आपसे कुछ पूछूं?"

गौतम- "पूज्य कुमारश्रमण! आपको जो कुछ पूछना हो, हर्ष से पूछें।"

केशी- "महानुभाव गौतम! महामुनि पार्श्वनाथ ने चातुर्मास धर्म का उपदेश दिया और भगवान वर्धमान ने पञ्चशिक्षिक धर्म का। इस मतभेद का क्या कारण है? समान मुक्ति मार्ग के साधकों के धर्ममार्ग में इस प्रकार की विभिन्नता क्यों? गौतम! इस मतभेद को देखकर आपको शंका और अश्रद्धा नहीं उत्पन्न होती?"

गौतम- "पूज्य कुमार श्रमण! सर्वत्र धर्म-तत्त्व का निर्णय बुद्धि से होता है। इसलिए जिस समय में जैसी बुद्धि वाले मनुष्य हों, उस समय में उसी प्रकार की बुद्धि के अनुकूल धर्म का उपदेश करना योग्य है।

प्रथम तीर्थंकर के समय में मनुष्य सरल परन्तु जड़ बुद्धि वाले थे। उनके लिए आचार मार्ग का शुद्ध रखना कठिन था। अन्तिम तीर्थंकर के समय में प्रायः कुटिल और जड़ बुद्धि वाले जीवों की अधिकता रहती है। उनके लिए आचार-पालन कठिन है। इस कारण प्रथम और अन्तिम तीर्थंकरों में पाञ्चमहाव्रतिक धर्म का उपदेश दिया, परन्तु मध्यवर्ती बाईस तीर्थंकरों के समय में जीव सरल और चतुर होते थे। वे थोड़े में बहुत समझ लेते और आचार को शुद्ध पाल सकते थे। इसी कारण बाईस तीर्थंकरों ने चातुर्याम धर्म का उपदेश दिया।"

केशी- "गौतम! तुम हजारों शत्रुओं के बीच में रहते हो और शत्रु तुम पर हमला भी करते हैं फिर भी तुम उन्हें कैसे जीत लेते हो?"

गौतम- "कुमारश्रमण! पहले मैं अपने एक शत्रु को जीतता हूं और तब पांच शत्रुओं को सहज जीत लेता हूं। पांच को जीतकर दस को और दस को जीतने के बाद हजारों को आसानी से जीत लेता हूं।"

केशी- "गौतम! वे शत्रु कौन हैं?"

गौतम- "हे मुनि! 'कर्मों से आबद्ध' आत्मा ही अपना शत्रु है जिसके जीतने से क्रोध, मान,माया,

लोभ नामक कषाय-शत्रु जीत लिए जाते हैं और इस तरह इन पांच के जीत लेने से श्रोत, चक्षु, घ्राण, जिह्वा और स्पर्शात्मक पांच इन्द्रियरूप शत्रु जीते जाते हैं। इन दस शत्रुओं को यथा न्याय जीतकर मैं सुख से विचरता हूं।''

केशी- ''गौतम! इस लोक में बहुसंख्यक लोग पाशों से बंधे हुए हैं, तो तुम इस प्रकार स्वतंत्र होकर कैसे फिरते हो?''

गौतम- हे मुनि! मैंने उपाय से उन पाशों को काट दिया है और उनका सर्वथा नाश कर पाश-मुक्त होकर फिरता हूं।

केशी- ''वे पाश कौन हैं?''

गौतम- ''राग, द्वेष और स्नेह-बन्धन ये तीव्र और भयंकर पाश हैं। इन सबका यथा न्याय उच्छेद करके आचार के अनुसार विचरता हूं।''

केशी- ''जीव के हृदय में एक बेल उगती है, बढ़ती है और विषैले फलों से फलती है। गौतम! उस बेल को तुमने कैसे उखाड़ दिया?''

गौतम- ''उस संपूर्ण बेल को पहले काटा, फिर उसका मूल उखाड़ा और ऐसा करके मैं विषैले फलों के भोग से बच गया हूं।''

केशी- ''गौतम! वह बेल कौन सी है?''

गौतम- ''हे महामुनि! वह बेल है 'भव तृष्णा'। यह स्वयं भयंकर है और भयंकर फल देती है। इसे मूल से उखाड़कर मैं यथा न्याय विचरता हूं।''

केशी- ''शरीर में जाज्वल्यमान घोर अग्नि रहती है जो शरीर को जलाती रहती है। गौतम! उस देहस्थ अग्नि को तुमने किस प्रकार शान्त किया?''

गौतम- ''महामेघ से बरसे हुए उत्तम जल को लेकर उस अग्नि में छिड़का करता हूं जिससे मुझे वह नहीं जलाती।''

केशी- ''गौतम! वह अग्नि कौन सी है?''

गौतम- ''कषाय (क्रोध, मान, माया, लोभ) विविध प्रकार की 'अग्नि' है और श्रुतज्ञान, शील और तप 'जल'। इस श्रुत शीलादि की जलधारा से छिड़की हुई कषाय-अग्नि शान्त हो जाती है। वह मुझे जला नहीं सकती।''

केशी- ''गौतम! जिस पर तुम चढ़े हो वह घोड़ा बहुत साहसिक, भयंकर और दुष्ट है। वह बड़ा तेज दौड़ता है। वह घोड़ा तुम्हें उन्मार्ग पर नहीं ले जाता?''

गौतम- दौड़ते हुए उस घोड़े को मैं श्रुतज्ञान की लगाम से पकड़े रखता हूं, जिससे वह मार्ग को नहीं छोड़ता।''

केशी- ''गौतम! वह घोड़ा कौन सा है?''

गौतम-'' 'मन'। यह साहसिक, भयंकर और अत्यंत तेज दौड़ने वाला दुष्ट घोड़ा है, जिसे मैं धर्मशिक्षा से वश में किए रहता हूं।''

केशी- ''गौतम! इस जगत् में अनेक कुमार्ग हैं, जिन पर चढ़कर जीव भटकते हुए मर जाते हैं, परन्तु गौतम! तुम मार्ग में कैसे भूले नहीं पड़ते?''

गौतम- ''कुमारश्रमण! जो मार्ग पर चलते हैं और जो उन्मार्गगामी हैं उन सबको मैं जानता हूं। यही

कारण है कि मैं मार्ग नहीं भूलता।''

केशी- ''वह मार्ग कौन सा है?''

गौतम- ''जिनोपदिष्ट 'प्रवचन' सन्मार्ग है और इसके विपरीत 'कुप्रवचन' उन्मार्ग। जो जिन प्रवचन के अनुसार चलते हैं वे मार्गगामी हैं और कुप्रवचन पर चलने वाले उन्मार्गगामी।''

केशी- ''मुनि गौतम! जल प्रवाह के वेग में बहते हुए प्राणियों की शरण और आधार क्या है?''

गौतम- ''जल के बीच एक महाद्वीप है जिसका विस्तार अतिमहान् है जहां जल के महावेग की गति नहीं होती, वही शरण है।''

केशी- ''गौतम! वह द्वीप कौन सा है?''

गौतम- ''जरा-मरण के महावेग में बहते हुए प्राणियों के लिए शरण, आधार और अवलंबनदायक 'धर्म' ही द्वीप है।''

केशी- ''जिसमें तुम बैठे हो, वह नाव समुद्र में चारों ओर घसीटी जा रही है। गौतम! इस तरह तुम इस अगाध समुद्र को कैसे पार कर सकोगे?''

गौतम- ''सछिद्र नाव समुद्र पार नहीं कर सकती, पर जो नाव निश्छिद्र होती है वह समुद्र पार कर सकती है। मैं निश्छिद्र नाव में बैठा हूं अतः समुद्र को पार करूंगा।''

केशी- ''गौतम! यह नाव कौन सी है?''

गौतम- ''शरीर नाव है, जीव नाविक और यह संसार समुद्र जिसे महार्षि लोग पार करते हैं।''

केशी- ''गौतम! बहुत से प्राणधारी जो घोर अंधकार में रहते हैं उनके लिए लोक में प्रकाश कौन करेगा?''

गौतम- ''सम्पूर्ण लोक को प्रकाशित करने वाला निर्मल सूर्य अखिल लोक में जीवों को प्रकाश देगा।''

केशी- ''गौतम! वह सूर्य कौन है?''

गौतम- ''जिनके जन्म मरण टल गए हैं ऐसे सर्वज्ञ 'जिन' ही सूर्य हैं। वे उदय पाकर सम्पूर्ण लोक में जीवों को प्रकाश देते हैं।''

केशी- ''हे गौतम! शारीरिक और मानसिक दुःखों से पीड़ित प्राणधारियों के लिए निर्बाध और निरूपद्रव कौन सा स्थान है?''

गौतम- ''लोक के अग्र भाग में ऐसा स्थान है, जो निश्चल और दुरारोह है। वहां जरा-मरण और व्याधि वेदना कुछ भी नहीं है।''

केशी- ''गौतम! वह स्थान कौन सा है?''

गौतम- निर्वाण, अनाबाध, सिद्धि और लोकाग्र इत्यादि नामों से वह पहचाना जाता है। वह कल्याणकारक, निरूपद्रव और निर्बाध है। इसकी स्थिति शाश्वत और चढ़ाव दुरारोह है। संसार प्रवाह को तैरकर जो महर्षि इस स्थान को प्राप्त होते हैं वे सब शोकों से परे हो जाते हैं।''

केशी- ''गौतम! तुम्हारी बुद्धि को साधुवाद! मेरे सभी संशय दूर हो गए। सर्वसूत्रों के महासागर गौतम! तुम्हें नमस्कार हो।''

इस प्रकार अपने संदेह दूर होते ही केशीकुमार श्रमण ने गौतम को सिर झुकाकर अभिवादन किया और वहीं भगवान महावीर के मार्गानुगत पञ्चमहाव्रतिक धर्म को स्वीकार किया।

केशी और गौतम के इस सम्मेलन से वहां श्रुतज्ञान और संयम धर्म का बड़ा उत्कर्ष हुआ और अनेक महत्वपूर्ण तत्वों का निर्णय हुआ। वहां एकत्रित सभा भी संतुष्ट होकर सन्मार्ग के स्वीकारने में तत्पर हुई।[५]

भगवान महावीर श्रावस्ती पधारे और कुछ समय वहां ठहरने के उपरान्त पाञ्चाल की तरफ विहार करके अहिच्छत्रा पधारे। वहां प्रचार करने के बाद कुरु जनपद की ओर उन्होंने विहार किया और हस्तिनापुर पहुंचकर नगर के बाहर सहस्राम्रवन नामक उद्यान में ठहरे।

शिव राजर्षि द्वारा सम्मान

हस्तिनापुर के राजा शिव सुखी, संतोषी और धर्म प्रेमी थे। एक दिन मध्य रात्रि में शिव की नींद टूट गई। वे राजकाज की चिन्ता करते-करते अपनी वर्तमान स्थिति और उसके कारणों की मीमांसा में उतर पड़े। सोचने लगे- 'अहा! मैं इस समय सब प्रकार से सुखी हूं। पुत्र, पशु, राज्य, राष्ट्र, सेना, वाहन, कोष, स्त्री और धन-संपदा आदि सब बातों से मैं बढ़ रहा हूं। यह सब मेरे पूर्वभव के शुभ कर्मों का फल है। धर्म का यह फल भोगते हुए मुझे भविष्य के लिए भी कुछ करना चाहिए। अच्छा, तो अब मैं कल ही लोहमय कड़ाह, कड़ुच्छुय और ताम्रीयभाजन बनवाऊंगा और कुमार शिवभद्र को राज्यभिषिक्त कर लोही, लोहकड़ाह आदि उपकरण लेकर गंगा तटवासी दिशा-प्रोक्षक वानप्रस्थ तापसों के समीप जाकर परिव्रज्या स्वीकार कर लूंगा। उसी समय नियम धारण करूंगा कि आज से जीवन पर्यन्त मैं दिशा-चक्रवाल तप करूंगा'।

प्रातःकाल होते ही शिव ने अपने सेवकों को बुलाया और सब तैयारियां करवाई। युवराज शिवभद्र का राज्याभिषेक करके उसने एक बड़ी जातीय सभा बुलाई जिसमें ज्ञातिजनों के उपरान्त मित्र और स्नेही संबन्धियों को भी आमंत्रित किया। आगन्तुक मेहमानों का भोजनादि से योग्य सत्कार करने के उपरान्त शिव ने उनके सामने अपना अभिप्राय प्रकट किया और शिवभद्र तथा उन सबकी सन्मति प्राप्त कर लोही, लोहकड़ाह आदि लेकर शिव दिशा-प्रोक्षक तापसों के निकट पहुंचे और उनके मत की परिव्रज्या ले दिशा-प्रोक्षक तापस हो गए।

शिव राजर्षि अपने निश्चयानुसार प्रतिज्ञा कर छट्ठ-छट्ठ से दिशाचक्रवाल तप करने लगे। पहला छट्ठ पूरा होने पर वल्कल पहने हुए शिव राजर्षि तपोभूमि से अपनी कुटिया में आए। किठिन-सांकायिका-बांस का पात्र और कावड़ लेकर पूर्व दिशा का प्रोक्षण करते हुए बोले- "पूर्व दिशा में सोम महाराज प्रस्थान-प्रस्थित शिव राजर्षि का अभिरक्षण करो और वहां के कंद, मूल, त्वचा, पत्र, पुष्प, फल, बीज, हरियाली और तृणों के ग्रहण करने की आज्ञा प्रदान करो।"

उक्त प्रार्थना कर वे पूर्व दिशा में चले और वहां से कंद, मूल, त्वचा, पत्र, पुष्प फलादि से किठिन-सांकायिका को भरकर तथा दर्भ, कुश, समिधू, पत्रामोट आदि लेकर अपने झोंपड़े में लौटे। किठिन-सांकायिका को एक तरफ रखकर वेदिका को झाड़ा तथा लीपा। फिर दर्भगर्भित कलश लिए गंगा में गए। वहां स्नान-मज्जन किया और दैवत-पितरों को जलादि अर्पण करके कलश भरकर कुटिया को लौटे। दर्भ-कुश और बालुका की रचना की। अरणि को शर से रगड़कर आग उत्पन्न की और समधि काष्ठों से उसे जलाया। अग्नि-कुंड की दाहिनी तरफ सकथा, वल्कल, स्थान, शय्या-भाण्ड, कमण्डलु, काष्ठदण्ड और आत्मा को एकत्र कर शहद, घृत और तंदुलों से अग्नि में आहुतियां दे चरु तैयार किया। उसमें वैश्वदेव-

बलि करने के उपरान्त अतिथि-पूजन किया और फिर स्वयं भोजन किया।

इसके बाद शिव राजर्षि दूसरा षष्ठ क्षपण कर तपोभूमि में गए और पूर्ववत् ध्यान किया। पारणा के दिन वे अपने झोंपड़े में आए और दक्षिण दिशा का प्रोक्षण कर बोले- "दक्षिण दिशा में यम महाराज प्रस्थान-प्रस्थित शिव राजर्षि का अभिरक्षण करो।" फिर वही क्रिया की, जो पहले पारणा के दिन की थी।

इसी तरह तीसरा छट्ठ कर पारणा के दिन पश्चिम दिशा का प्रोक्षण कर शिव ने कहा- पश्चिम दिशा में वरुण महाराजा प्रस्थान-प्रस्थित शिव राजर्षि का अभिरक्षण करो।" शेष सब विधान पूर्ववत् किया।

चौथे छट्ठ के अन्त में उत्तर दिशा का प्रोक्षण कर शिव बोले- "उत्तर दिशा में वैश्रमण महाराज प्रस्थान-प्रस्थित शिव राजर्षि का अभिरक्षण करो।" शेष सभी क्रियाएं पूर्ववत् कीं।

शिव राजर्षि ने लम्बे समय तक तप किया-आतापना की, जिसके फलस्वरूप उन्हें विभंगज्ञान हुआ और सात समुद्रों तक स्थूल-सूक्ष्मदर्शी पदार्थों को जानने-देखने लगे।

इस ज्ञानदृष्टि से शिव राजर्षि के मन में यह संकल्प उत्पन्न हुआ कि मुझे विशिष्ट ज्ञान-दर्शन उत्पन्न हुए हैं। इन ज्ञान-दर्शन से मैं जानता और देखता हूं कि इस लोक में सात द्वीप और सात ही समुद्र हैं। इनके उपरान्त न द्वीप हैं, न समुद्र। ज्ञान उत्पन्न होने के उपरान्त शिव तपोभूमि से अपने झोंपड़े में गए और वल्कल पहन लोही, लोहकड़ाह, कड़ुच्छुय, दण्ड, कमण्डल, ताम्रभाजन और किठिन-सांकायिका लिए हस्तिनापुर के तापसाश्रम में गए और भाजनादि सामग्री वहां रखकर हस्तिनापुर में गए। वहां पर उन्होंने अपने ज्ञान से जाने हुए सात द्वीप समुद्रों की बात कही और बोले- "संसारभर में सात ही द्वीप और समुद्र हैं, अधिक नहीं।"

जिस समय भगवान महावीर हस्तिनापुर पधारे थे, उस समय शिव भी वहीं थे और अपने सात द्वीप समुद्र विषयक सिद्धान्त का प्रतिपादन कर रहे थे। लोगों में इस नए सिद्धान्त पर टीका टिप्पणियां हो रही थीं।

इन्द्रभूति गौतम भगवान की आज्ञा ले हस्तिनापुर में भिक्षाचर्या को गए तो उन्होंने भी सात द्वीप-समुद्रों की बात सुनी। गौतम ने सहस्रभवन में लौटकर उक्त जनप्रवाद के संबंध में भगवान से पूछा कि- 'सात ही द्वीप-समुद्र हैं' यह शिवर्षि का कथन ठीक है क्या? और इस विषय में आपका क्या सिद्धान्त है?"

भगवान महावीर ने कहा- "सात द्वीप-समुद्र संबन्धी शिवर्षि का सिद्धान्त मिथ्या है। इस विषय में मेरा कथन यह है कि जम्बूद्वीप प्रभृति असंख्य द्वीप और लवण आदि असंख्य ही समुद्र हैं। इन सबका आकार विधान तो एक सा है पर विस्तार भिन्न-भिन्न है।"

भगवान प्रभु महावीर के पास उस समय सभा जमी हुई थी। दर्शन, वन्दन और धर्मश्रवण के निमित्त आए नगर-निवासी अभी वहीं बैठे हुए थे। धर्मश्रवण कर नगर-निवासीजन अपने-अपने स्थान पर गए। सबके मुंह में सुने हुए उपदेश की विशेषतः शिवर्षि के सिद्धान्त विषयक गौतम के प्रश्नोत्तर की चर्चा की। वे कहते थे- "शिवर्षि का सात द्वीप-समुद्र संबन्धी सिद्धान्त ठीक नहीं है। श्रमण भगवान महावीर कहते हैं कि द्वीप-समुद्र सात ही नहीं, असंख्य हैं।"

शिवर्षि महावीर की योग्यता से अपरिचित नहीं थे। उनके ज्ञान और महत्व की बातें उन्होंने कई बार सुन रखी थीं। जब उन्होंने अपने सिद्धान्त के विषय में महावीर का अभिप्राय सुना तो वे विचार में पड़ गए। मन ही मन बोले-'यह कैसी बात है? द्वीप-समुद्र असंख्य हैं? मैं तो सात ही देख रहा हूं और प्रभु महावीर असंख्य बताते हैं? क्या मेरा ज्ञान अपूर्ण है?' इस प्रकार संकल्प-विकल्प करते हुए वे शंकाशील

होते गए। परिणामस्वरूप उनको जो कुछ आत्मिक साक्षात्कार हुआ था वह तिरोहित हो गया। तब उन्होंने सोचा कि 'अवश्य ही इस विषय में महावीर का कथन सत्य होगा। वे ज्ञानी तीर्थंकर हैं। उन्हें अनेक योग विभूतियां प्राप्त हो चुकी हैं ऐसे अर्हन्तों का दर्शन तो क्या नाम श्रवण भी दुर्लभ होता है। अच्छा, तो अब मैं भी इन महापुरुष के पास जाऊं और उपदेश सुनुं।'

शिव राजर्षि वहां से तापसाश्रम में गए और लोही, लोहकड़ाह आदि को लेकर हस्तिनापुर के मध्य में से होते हुए सहस्राम्रवन में पहुंचे। प्रभु महावीर के पास जाकर त्रिप्रदक्षिणापूर्वक उनके वंदन करके योग्य स्थान पर बैठ गए।

श्रमण भगवान ने शिव राजर्षि तथा उस महती सभा के समक्ष निर्ग्रन्थ प्रवचन किया जिसे सुनकर शिवर्षि परम संतुष्ट हुए। वे उठे और हाथ जोड़कर भगवान से प्रार्थना करते हुए बोले- "भगवन्! निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करता हूं। भगवन्! मुझे भी हस्तालम्बन दीजिए। निर्ग्रन्थ मार्ग की दीक्षा देकर आप मुझे भी मोक्षमार्ग का पथिक बनाइए।"

भगवान महावीर ने शिव राजर्षि की प्रार्थना को स्वीकार किया। राजर्षि लोही, लोहकड़ाह आदि को लेकर ईशान दिशा की तरफ चले। थोड़ी दूर जाकर अपने उपकरणों को छोड़ दिया और पंचमुष्टिक लोच कर महावीर के पास लौटे। भगवान महावीर ने उन्हें पंच महाव्रत दिए और श्रमण धर्म की विशेष शिक्षा-दीक्षा के लिए उन्होंने स्थविरों के सुपुर्द कर दिया। निर्ग्रन्थ मार्ग में प्रवेश करने के बाद भी शिवर्षि ने कठिन तप किए और एकादशाङ्ग निर्ग्रन्थ प्रवचन का अध्ययन किया। अन्त में शिव राजर्षि सर्व कर्मों के नाश पर निर्वाण को प्राप्त हुए।[६५]

भगवान महावीर के इस समवसरण में अन्य कई धर्मार्थियों ने निर्ग्रन्थ प्रवचन की दीक्षा ली जिनमें अनगार पुट्ठिल का नाम विशेष उल्लेखनीय है। यहां के पोटिल ने ३२ पत्नियों को त्यागकर दीक्षा ग्रहण की।[६७]

हस्तिनापुर से भगवान मोका नगरी की तरफ पधारे और मोका के नन्दन चैत्य में ठहरे। वहां पर उन्होंने अग्निभूति और वायुभूति के प्रश्नों के उत्तर में देवों की विकुर्वणा शक्ति का वर्णन करने के उपरांत ईशानेन्द्र और चमरेन्द्र के पूर्व भवों का निरूपण किया।[६८]

मोका नगरी में गणधरों द्वारा प्रश्नोत्तर

प्रभु महावीर जब हस्तिनापुर में विराजमान थे तो लम्बा समय वहां रहे। हस्तिनापुर जैन संस्कृति का प्राचीन केन्द्र था। इसके साथ अन्य धर्मों के धर्माचार्य भी यहां घूमते थे।

हस्तिनापुर धर्म-प्रचार करने के पश्चात् प्रभु महावीर मोका नगरी में पधारे। मुनि कल्याणविजय, आचार्य विजयइन्द्रसूरि व आचार्य देवेन्द्र मुनि ने इसकी पहचान पंजाब के शहर मोगामण्डी से की है।

उस समय प्रभु महावीर नन्दन चैत्य में विराजमान हुए। गणधर अग्निभूति ने प्रभु महावीर से पूछा-

"हे भगवन्! असुरराज चमर के पास कितनी ऋद्धि, कान्ति, बल, कीर्ति, सुख, प्रभाव तथा विकुर्वणा शक्ति है?"

प्रभु महावीर ने अपने शिष्य को उत्तर देते हुए समझाया- " हे देवानुप्रिय! उस असुरराज चमर के पास ३४ लाख भवनवासी, ६४ हजार सामानिक देव, ३३ त्रायस्त्रिंशक देव, ४ लोकपाल, ५ पटरानी, ७ सेन तथा २ लाख ५६ हजार आत्म-रक्षकों और अन्य भवनवासी की देव ऋद्धि है। वह उन पर शासन

करता हुआ सांसारिक सुखभोग भोगता हुआ जीवन-यापन कर रहा है। उसे वैक्रिय शरीर बनाने की विशेष अभिरुचि है। वह सम्पूर्ण जम्बूद्वीप तो क्या तिर्यक् लोक के असंख्य द्वीप व समुद्र असुरकुमार देव और देवियों से भर जाएं, उनके रूप विकुर्वित कर सकता है।

वायुभूति गणधर की जिज्ञासा

अब वायुभूति ने असुरराज बलि के संबंध में प्रश्न किया।

प्रभु महावीर ने गणधर अग्निभूति को उत्तर देते हुए समझाया- उसके पास ४४ लाख भवनवासी, ६ हजार सामानिक देव, ३३ त्रायस्त्रिंशक देव, ४ लोकपाल, ६ पटरानी, २४ हजार आत्म-रक्षक देव हैं। बाकी ऋद्धि व शक्ति असुरराज चमर की तरह ही समझनी चाहिए।

अग्निभूति ने इसी तरह स्तनितकुमार, व्यंतर देव और ज्योतिष्कों के संबंध में प्रश्न पूछे।

इनके उत्तर में प्रभु महावीर ने फरमाया- "व्यंतरों तथा ज्योतिष्कों में त्रायस्त्रिंशक तथा लोकपाल नहीं होते। वह ४ हजार सामानिक देव तथा १६ हजार आत्म-रक्षक देवों और पटरानियों के स्वामी होते हैं।"

ये प्रश्न भगवतीसूत्र ३/१/२७०-२८३ में उपलब्ध होते हैं। यह प्रथम बार है, जब इन्द्रभूति के अतिरिक्त प्रभु महावीर के किसी अन्य गणधर के प्रश्न करने का वर्णन है।

भगवान महावीर यहां से पुनः वापस लौटे। वह वाणिज्यग्राम में वर्षावास हेतु पधारे।

उनतीसवां वर्ष

वर्षावास समाप्त करके प्रभु महावीर विदेह देश की ओर पधारने लगे। आप फिर मगध देश की राजधानी राजगृही के गुणशील चैत्य में पधारे। राजगृही अब निर्ग्रन्थों का मुख्य केन्द्र बन चुका था। यहां के राजा व प्रजा दोनों प्रभु महावीर के प्रति समर्पित थी। इतना सब होते हुए भी यहां बौद्ध, आजीवक, सांख्य आदि मतों को मानने वाले भी विपुल संख्या में निवास करते थे।

एक समय आजीवक भिक्षुओं के संबंध में इन्द्रभूति गौतम ने भगवान से पूछा- आजीवक लोग स्थविरों से पूछते हैं कि निर्ग्रन्थो! तुम्हारे श्रमणोपासक का, जब वह सामायिक व्रत में रहा हुआ हो, कोई भाण्ड चोरी चला जाए तो सामायिक पूरा कर वह उसकी तलाश करता है या नहीं? यदि करता है तो वह अपने भाण्ड की तलाश करता है या पराए की?"

उत्तर में भगवान ने कहा-"गौतम! वह अपने भाण्ड की तलाश करता है, पराए की नहीं।"

गौतम- "भगवन्! शीलव्रत, गुणव्रत, प्रत्याख्यान और पौषधोपवास से उसका भाण्ड 'अभाण्ड' नहीं हो जाता?"

महावीर- हां, सामायिक, पौषधादि व्रत में स्थित श्रमणोपासक का भाण्ड 'अभाण्ड' हो जाता है।"

गौतम- "भगवन्! जब व्रत दशा में उसका वह भाण्ड अभाण्ड हो गया तो उस दशा में चोरी हुए उस भाण्ड का व्रत पूरा करने के बाद श्रमणोपासक के तलाश करने पर 'वह अपने भाण्ड की तलाश करता है' यह कैसे कहा जाएगा? जब उसका वह भाण्ड ही नहीं रहा तो उसकी तलाश करने का उसे क्या अधिकार है?"

महावीर- "गौतम! व्रत दशा में उसकी भावना यह होती है कि यह सोना, रूपा, कांस्य, दूष्य या मणि-रत्नादि कोई पदार्थ मेरा नहीं है। इस प्रकार उस समय उन पदार्थों से वह अपना संबन्ध छोड़ देता है- उनका उपयोग नहीं करता। पर उन पदार्थों पर से उसका ममत्वभाव नहीं छूटता और ममत्वभाव के

न छूटने से वह पदार्थ पराया नहीं होता, उसी का रहता है।''

गौतम- ''भगवन्! सामायिक व्रत के स्थित श्रमणोपासक की भार्या से कोई संगम करे तो क्या कहा जाएगा- भार्या से संगम या अभार्या से?''

महावीर- ''श्रमणोपासक की भार्या से संगम करता है, यही करना चाहिए।''

गौतम- ''भगवन्! शीलव्रत, गुणव्रत और पौषधोपवास से भार्या 'अभार्या' हो सकती है?''

महावीर- ''हां, गौतम! व्रत दशा में श्रमणोपासक की यह भावना होती है कि माता, पिता, भाई, बहन, भार्या, पुत्र, पुत्री, और पुत्रवधु कोई मेरा नहीं है। यह भावना होते हुए भी उनसे उसके प्रेम-बन्धनों का विच्छेद नहीं होता। इसलिए 'भार्या-संगम' ही कहा जाएगा 'अभार्या-संगम' नहीं।[९]

श्रमणोपासक व आजीवकोपासक

श्रमणोपासक गतकाल में किए हुए प्राणातिपात का ४९ प्रकार से प्रतिक्रमण करता है, वर्तमानकालिन प्राणातिपात का ४९ प्रकार से नियमन करता है और अनागत काल के प्राणातिपात का ४९ प्रकार से निषेध करता है। इस प्रकार श्रमणोपासक के स्थूल प्राणातिपात-विरमणव्रत के कुल १४७ भेद होते हैं।

इसी प्रकार स्थूल मृषावाद-विरमण, स्थूल अदत्तादान-विरमण, स्थूल मैथुन-विरमण और स्थूल परिग्रह-विरमण के भी प्रकार के १४७-१४८ भेद होते हैं जिनमें से अमुक व्रत का अमुक भेद पालन करने वाला भी श्रमणोपासक होता है। इस प्रकार विविध भंग के व्रत पालने वाले श्रमणोपासक होते हैं, आजीवकोपासक नहीं होते।

आजीवक मत के शास्त्रों का अर्थ ही यह है कि सचित पदार्थों का भोजन करना-सर्व-प्राणियों का छेदन-भेदन और विनाश कर उनका भोजन करना।

आजीवक मत में ये बारह प्रसिद्ध आजीवकोपासक कहे गए हैं- ताल, तालपलंब, उव्विह, संविह, अवविह, उदय, नामुदय, नमोदय, अणुवालय, संखवालय, अयंपुल और कायरय। ये सभी आजीवकोपासक अरिहंत को देव मानने वाले और माता-पिता की सेवा करने वाले थे। ये गूलर, बड़, बेर, सतर (शहतूत) और पीपल इन पांच जाति के फलों और प्याज, लहसुन आदि कन्दमूल को नहीं खाते थे। ये त्रस जीवों की रक्षा करते हुए ऐसे बैलों से अपनी जीविका चलाते जो न बधिया होते और न नाक बींधे हुए।'' जब आजीवकोपासक भी इस प्रकार निर्दोष ढंग से जीविका चलाते थे तो श्रमणोपासक का तो कहना ही क्या? उन्हें तो पन्द्रह ही कर्मादानों का त्याग करना चाहिए।

इस वर्ष राजगृह के विपुल पर्वत पर अनेक अनगारों ने अनशन किया।

तीसवां वर्ष

तीसवां वर्ष चातुर्मास्य भगवान ने राजगृह में किया। चातुर्मास्य की समाप्ति होने पर भगवान महावीर ने राजगृह से चम्पा की ओर विहार कर चम्पा के पश्चिम में 'पृष्ठचम्पा' नामक उपनगर में ठहरे। पृष्ठचम्पा के राजा शाल और उसके छोटे भाई युवराज महाशाल ने महावीर का उपदेश सुना। संसार से विरक्त होकर शाल ने कहा- ''भगवन्! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करता हूं और अपना राज्य युवराज महाशाल को सौंपकर आपके चरणों में आकर श्रमण धर्म को स्वीकार करूंगा।''

भगवान महावीर ने कहा- ''विलम्ब मत करो।''

घर जाकर शाल ने अपने छोटे भाई को राज्यारूढ़ होने की प्रार्थना की, पर महाशाल ने उसको

स्वीकार नहीं किया और कहा कि जो धर्म आपने सुना है वही मैंने भी सुना है। जैसे आप संसार से विरक्त हैं वैसे मैं भी विरक्त हूं। मैं भी प्रव्रज्या ग्रहण करूंगा।

महाशाल के अतिरिक्त शाल के राज्य का कोई उत्तराधिकारी नहीं था। महाशाल के अस्वीकार करने पर अपने भागिनेय गागली नामक राजकुमार को बुलाकर उसे राज्यारूढ़ कर शाल तथा महाशाल ने भगवान महावीर के वरद हाथ से श्रमणधर्म की दीक्षा ली।

कामदेव श्रमणोपासक

पृष्ठ चम्पा से भगवान चम्पा के पूर्णभद्र चैत्य में पधारे। उन दिनों चम्पा निवासी श्रमणोपासक कामदेव अपने घर का कार्यभार ज्येष्ठ पुत्र के ऊपर छोड़कर भगवान महावीर के अन्तिम उपदेशों का पालन करने लगे थे, एक दिन कामदेव अपनी पौषधशाला में पौषध करते हुए रात्रि के समय ध्यान कर रहे थे। करीब मध्य रात्रि के समय वहां एक देव प्रकट हुआ और कामदेव को ध्यान में चलित करने का प्रयत्न करने लगा। पहले उसने पिशाच रूप में, फिर हाथी के रूप में और अन्त में सर्प के रूप में विविध विभीषिकाएं और यातनाएं दिखाईं पर कामदेव अपने ध्यान और विश्वास से विचलित न हुए। अन्त में देव हारकर उसकी प्रशंसा करता हुआ चला गया।

प्रातः समय कामदेव भगवान महावीर के समवसरण में गए और वन्दन नमस्कार कर धर्मोपदेश सुनने बैठे।

धर्मोपदेश पूर्ण होने के बाद भगवान ने कामदेव को संबोधन करते हुए कहा- "कामदेव! गत रात्रि में किसी देव ने पिशाच, हाथी और सर्प के रूप बनाकर तुझे ध्यान-भ्रष्ट करने के लिए विविध उपसर्ग किए, यह सत्य है?"

कामदेव- "जी हां, यह बात सत्य है।"

निर्ग्रन्थ श्रमण-श्रमणियों को संबोधन करते हुए भगवान महावीर ने कहा- "आर्यो! घर में रहते हुए कामदेव गृहस्थ श्रमणोपासक भी दिव्य, मानुषिक और तिर्यक् योनि सम्बन्धी उपसर्ग सहन कर सकते हैं, तो द्वादशाङ्ग गणिपिटकपाठी श्रमण निर्ग्रन्थों को तो अवश्य ही इस प्रकार के उपसर्ग सहन करने चाहिए।

निर्ग्रन्थ श्रमण-श्रमणियों ने भगवान का वचन विनयपूर्वक स्वीकार किया।[९]

महाराज दशार्ण की प्रभु-भक्ति व दीक्षा

चम्पा से भगवान ने दशार्णपुर को प्रयाण किया। दशार्ण का राजा दशार्णभद्र आपका भक्त था। आपके आगमन पर उसने बड़ा उत्सव किया और बड़े ही ठाटबाट के साथ वह वन्दन करने गया।

दशार्णभद्र को अपनी ऋद्धि, समृद्धि का बड़ा अभिमान था, पर भगवान महावीर के वन्दनार्थ आए हुए देवेन्द्र की ऋद्धि देखकर उसका अभिमान उतर गया। भगवान महावीर के पास श्रमणधर्म को स्वीकार कर वह श्रमणसंघ में दाखिल हुआ।

दशार्णपुर से भगवान विदेह भूमि की तरफ प्रयाण कर वाणिज्यग्राम पधारे।

वाणिज्यग्राम में सोमिल नामक एक विद्वान ब्राह्मण रहता था, जो धनी मानी अपने कुटुम्ब का मुखिया और ५०० विद्यार्थियों का अध्यापक था। उसने जब सुना कि तीर्थंकर भगवान महावीर नगर के दूतिपलास चैत्य में पधारे हैं, तो उसने भी वहां जाने का विचार किया, यह सोचकर कि वहां जाकर उन्हें

कई प्रश्न पूछूं।

सोमिल एक सौ छात्रों के साथ अपने घर से निकला और वाणिज्यग्राम के मध्य में से होता हुआ दूतिपलास पहुंचा। वहां भगवान महावीर से कुछ दूर खड़े रहकर बोला-"भगवन्! तुम्हारे सिद्धान्त में यात्रा है? यापनीय है? अव्याबाध है? प्रासुक विहार है?"

महावीर- "हां, सोमिल! मेरे यहां यात्रा भी है, यापनीय भी। अव्याबाध भी है और प्रासुक विहार भी है।"

सोमिल- "भगवन्! आपकी यात्रा क्या है?"

महावीर- "तप, नियम, संयम, स्वाध्याय, ध्यान और आवश्यकादि योगों में जो यतना-उद्यम है वह मेरी यात्रा है।"

सोमिल- "भगवन्! आपका यापनीय क्या है?"

महावीर- "सोमिल! यापनीय दो प्रकार का कहा है- एक इन्द्रिय-यापनीय और दूसरा नोइन्द्रिय यापनीय। श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, जिह्वेन्द्रिय तथा स्पर्शेन्द्रिय इन पांच इन्द्रियों को वश में रखता हूं- यह मेरा 'इन्द्रिय-यापनीय' है और मेरे क्रोध, मान, माया, लोभ विच्छिन्न हो गए हैं। इन कषाओं का कभी प्रादुर्भाव नहीं होता। यह मेरा 'नोइन्द्रिय-यापनीय' है।"

सोमिल- "भगवन्! आपका अव्याबाध क्या है?"

महावीर- "सोमिल! मेरे शरीरगत वातिक, पैत्तिक, श्लेष्मिक, सान्निपातिक आदि विविध रोगातङ्क दोष उपशान्त हो गए हैं। कभी वे प्रकट नहीं होते हैं। यही मेरा अव्याबाध है।"

सोमिल- "भगवन्! आपका प्रासुक विहार क्या है?"

महावीर- "सोमिल! आरामों, उद्यानों, देवकुलों, सभाओं, प्रपाओं और स्त्री-पशु-पण्डक वर्जित बस्तियों में प्रासुक तथा कल्पनीय पीठफलक, शय्या, संस्तारक स्वीकार करके विचरता हूं। यही मेरा प्रासुक विहार है।"

सोमिल- "भगवन्! सरिसवय आपके भक्ष्य हैं या अभक्ष्य?"

महावीर- "सरिसवय भक्ष्य भी हैं और अभक्ष्य भी।"

सोमिल- "दोनों प्रकार कैसे?"

महावीर- ब्राह्मण्यनयों में (ब्राह्मणों के ग्रन्थों में) सरिसवय शब्द के दो अर्थ होते हैं- एक मित्र-सरिसवय (सदृशशवयाः) और दूसरा धान्य-सरिसवय (सर्षपः)। इनमें मित्र-सरिसवय तीन प्रकार के कहे हैं- (१) सहजात, (२) सहवर्धित, और (३) सहप्रांशुक्रीडित। ये सरिसवय श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए अभक्ष्य हैं।

धान्य-सरिसवय दो प्रकार के होते हैं- (१) शस्त्र-परिणत, और (२) अशस्त्र-परिणत। इनमें जो अशस्त्र-परिणत होते हैं वे श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए अभक्ष्य हैं।

शस्त्र-परिणत सरिसवय भी दो प्रकार के होते हैं- (१) याचित, और (२) अयाचित। इनमें अयाचित श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए अभक्ष्य हैं।

याचित भी दो प्रकार के होते हैं- (१) लब्ध, और (२) अलब्ध। इनमें अलब्ध श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए अभक्ष्य हैं।

केवल शस्त्र-परिणत एषणीय याचित और लब्ध धान्य सरिसवय ही श्रमण निर्ग्रन्थों का भक्ष्य हैं। इस कारण सरिसवय भक्ष्य भी कहे जा सकते हैं और अभक्ष्य भी।"

सोमिल- ''भगवन्! 'मास' आपको भक्ष्य हैं या अभक्ष्य?''

महावीर- ''ब्राह्मण्यनयो में 'मास' दो प्रकार के कहे गए हैं- (१) द्रव्यमास (माष),और (२) कालमास। इनमें कालमास श्रावण से आषाढ़ पर्यन्त बारह हैं, जो अभक्ष्य हैं।

द्रव्यमास (माष) दो प्रकार के कहे हैं- (१) अर्थमास (माष), और (२) धान्यमास (माष)। इनमें से अर्थमाष दो प्रकार के होते हैं- (१) सुवर्णमाष, और (२) रूपयमाष। ये दोनों श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए अभक्ष्य हैं। रहे धान्यमाष, सो उनके भी शस्त्रपरिणत-अशस्त्रपरिणत, एषणीय-अनेषणीय, याचित-अयाचित, लब्ध-अलब्ध आदि अनेक प्रकार हैं। इनमें शस्त्रपरिणत एषणीय याचित और लब्ध धान्यमाष श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए भक्ष्य हैं, शेष अभक्ष्य।''

सोमिल- ''भगवन्? 'कुलत्था' आपके भक्ष्य हैं या अभक्ष्य?''

महावीर-कुलत्था भक्ष्य भी है, अभक्ष्य भी।

सोमिल- ''यह कैसे?''

महावीर- ''ब्राह्मण्य ग्रन्थों में 'कुलत्था' शब्द के दो अर्थ होते हैं- (१) कुलथी धान्य और (२) कुलीन स्त्री।

कुलीन स्त्री तीन प्रकार की होती हैं- (१) कुलकन्या, (२) कुलवधु, और (३) कुलमाता। ये कुलत्था श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए अभक्ष्य हैं।

'कुलत्था' धान्य भी सरिसवय की तरह अनेक तरह का होता है, उसमें शस्त्रपरिणत, एषणीय, याचित और लब्ध 'कुलत्था' श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए भक्ष्य हैं, शेष अभक्ष्य।''

सोमिल- ''भगवन्! आप एक हैं या दो? तथा आप अक्षय, अव्यय और अवस्थित हैं या भूत, वर्तमान, भविष्यत् के अनेक रूपधारी?''

महावीर- ''मैं एक भी हूं और दो भी। मैं अक्षय, अव्यय, अवस्थित हूं और भूत, वर्तमान, भविष्यद्रूपधारी भी।''

सोमिल- ''भगवन्! यह कैसे?''

महावीर- ''सोमिल! मैं आत्मद्रव्य रूप से एक हूं और ज्ञान-दर्शन रूप से दो भी हूं। मैं आत्म-प्रदेशों की अपेक्षा से अक्षय,अव्यय, अवस्थित हूं, पर उपयोग-पर्याय की अपेक्षा से भूत, वर्तमान और भविष्यत् के नाना रूपधारी भी हूं।

धर्मचर्चा सुनकर सोमिल ब्राह्मण तत्वमार्ग को समझ गया। वह वन्दन करके बोला- ''भगवन्! आपका कथन यथार्थ है। मैं आपके निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करता हूं। मैं अन्य राजा महाराजाओं और सेठ-साहूकारों की तरह आपके पास निर्ग्रन्थ श्रमणमार्ग की प्रव्रज्या ग्रहण करने में तो समर्थ नहीं हूं, परन्तु मैं आपके पास श्रावकधर्म को स्वीकार कर सकता हूं।'' भगवान महावीर की आज्ञा प्राप्त कर सोमिल ने श्रावकधर्म के द्वादश व्रत ग्रहण किए और भगवान को वन्दन कर अपने घर गया।

श्रमणोपासक होने के बाद सोमिल ने निर्ग्रन्थ प्रवचन का विशेष तत्त्वज्ञान प्राप्त किया और अन्त में समाधिपूर्वक आयुष्य पूर्ण कर स्वर्गवासी हुआ।[२०]

भगवान महावीर ने तीसवां वर्षा चातुर्मास वाणिज्यग्राम में व्यतीत किया।

इकतीसवां वर्ष

वाणिज्यग्राम का वर्षावास पूर्ण कर भगवान महावीर कोशल देश के साकेत, सावत्थी आदि नगरों

को पावन करते हुए पांचाल की ओर पधारे तथा कम्पिलपुर के बाहर सहस्राम्रवन उद्यान में विराजे। कम्पिलपुर में अम्बड नामक एक ब्राह्मण परिव्राजक अपने सात सौ शिष्यों के साथ रहता था। उसने भगवान महावीर के त्याग-वैराग्यमय जीवन को देखा, केवलज्ञान, केवलदर्शन से युक्त प्रवचन सुने तो वह अपने शिष्यों के साथ जैनधर्म का उपासक हो गया। परिव्राजक सम्प्रदाय की वेश-भूषा रखने पर भी वह जैन श्रावकों के पालन योग्य व्रत-नियमों का सम्यक् प्रकार से पालन करता था।

अम्बड़ परिव्राजक

एक दिन भिक्षा के लिए परिभ्रमण करते हुए गणधर गौतम ने सुना कि अम्बड़ संन्यासी कम्पिलपुर में एक साथ सौ घरों में आहार ग्रहण करता है और वह सौ ही घरों में दिखलाई देता है।

गौतम ने भगवान से पूछा- "भगवन्! क्या यह सत्य है?"

महावीर- "गौतम! अम्बड़ परिव्राजक स्वभाव से विनीत और प्रकृति से भद्र है। निरन्तर बेले-बेले की तपस्या के साथ आतापना लेने से और शुभ परिणामों से वीर्यलब्धि और वैक्रियलब्धि के साथ अवधिज्ञान भी उसे प्राप्त हुआ है, जिसके कारण वह सौ रूप बनाकर सौ घरों में दिखलाई देता है और सौ घरों में आहार ग्रहण करता है, यह सत्य है।"

गौतम- "प्रभो! क्या अम्बड़ परिव्राजक आपके पास श्रमणधर्म ग्रहण करेगा?"

महावीर- अम्बड़ जीवाजीव का ज्ञाता श्रमणोपासक है। वह उपासक जीवन में ही आयु पूर्ण करेगा, किन्तु श्रमणधर्म स्वीकार नहीं करेगा। अम्बड़ स्थूल हिंसा, स्थूल मृषावाद,स्थूल अदत्तादान से विरत तथा सर्वथा ब्रह्मचारी और पूर्ण सन्तोषी है। यह यात्रा में चलते हुए मार्ग में आए पानी के अतिरिक्त किसी नदी, कूप या तालाब आदि में नहीं उतरता है। रथ, गाड़ी, पालकी आदि यान अथवा हाथी, घोड़ा आदि किसी भी वाहन पर नहीं बैठता है, केवल पैदल चलता है। खेल, तमाशे, नाटक आदि नहीं देखता है और न राजकथा, देशकथा आदि ही करता है। वह हरी वनस्पति का छेदन-भेदन और स्पर्श भी नहीं करता। वह तुम्बा, काष्ठ-पात्र, और मृत्तिकाभाजन के अतिरिक्त लोह, त्रपु, त्राम, जस्ता, सीसा, चांदी, सोना आदि किसी प्रकार का धातुपात्र नहीं रखता है। एक ताम्रमय पवित्रक के अतिरिक्त किसी प्रकार का आभूषण धारण नहीं करता। गेरूआ चादर के अतिरिक्त किसी अन्य रंग के वस्त्र धारण नहीं करता। शरीर पर गंगा की मिट्टी के लेप के सिवाय चन्दन, केसर आदि का भी विलेपन नहीं करता। जो भोजन अपने लिए बनाया है, खरीदा है या अन्य के द्वारा लाया गया है, वह भोजन ग्रहण नहीं करता। उसने स्नान और पीने के लिए जल का भी प्रमाण कर रखा है, वह छाना हुआ और दिया हुआ जल ग्रहण करता है किन्तु अपने हाथ से जलाशय से ग्रहण नहीं करता।"

गौतम- "अम्बड़ आयु पूर्ण कर किस गति में जाएगा?"

महावीर- अनेक वर्षों तक साधना का जीवन व्यतीत कर अम्बड़ सन्यासी अन्त में एक मास के अनशन की आराधना कर ब्रह्म देवलोक में देव बनेगा और अन्त में अम्बड़ का जीव महाविदेह में मनुष्य-जन्म पाकर निर्वाण प्राप्त करेगा।"

कम्पिलपुर से भगवान महावीर ने पुनः विदेह भूमि की ओर प्रस्थान किया और इकतीसवां वर्षावास वैशाली में किया।

बत्तीसवां वर्षः गांगेय अनगार

वैशाली का वर्षावास पूर्ण होने पर भगवान महावीर ने काशी-कौशल के प्रदेशों में परिभ्रमण किया और पुनः ग्रीष्मकाल में विदेह भूमि की ओर लौटे। भगवान महावीर वाणिज्यग्राम के बाहर पधारे। दूतिपलाश उद्यान में विराजे। प्रवचन पूर्ण होने पर श्रोतागण अपने-अपने घरों की ओर प्रस्थान कर चुके थे। उस समय गांगेय नामक एक पार्श्वापत्य मुनि भगवान के सन्निकट आए। भगवान महावीर से कुछ दूर पर खड़े रहकर उन्होंने पूछा- "भगवन्! नरकावास में नारक सान्तर उत्पन्न होते हैं या निरन्तर?"[७१]

महावीर- "गांगेय! नारक सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी।"

गांगेय- "भगवन्! असुरकुमारादि भवनपति देव सान्तर उत्पन्न होते हैं या निरन्तर?"

महावीर- "असुरकुमारादि भवनपति देव सान्तर भी उत्पन्न होते हैं या निरन्तर भी।"

गांगेय- "भगवन्! पृथ्वीकायिकादि एकेन्द्रिय जीव सान्तर उत्पन्न होते हैं या निरन्तर?"

महावीर- "गांगेय! पृथ्वीकायादि जीव सान्तर उत्पन्न नहीं होते, वे अपने अपने स्थानों में निरन्तर उत्पन्न होते रहते हैं।"

गांगेय- "भगवन्! द्वीन्द्रिय जीव सान्तर उत्पन्न होते हैं या निरन्तर?"

महावीर- "गांगेय! द्वीन्द्रिय जीव सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी।"

इसी प्रकार त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय, तिर्यंच, मनुष्य और देव भी सान्तर और निरन्तर उत्पन्न होते हैं।"

गांगेय- "भगवन्! नैरयिक सान्तर च्यवता है या निरन्तर च्यवता है?"

महावीर- "गांगेय! नैरयिक सान्तर भी च्यवता है और निरन्तर भी च्यवता है।"

इसी प्रकार द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय, तिर्यंच, मनुष्य तथा देव भी कभी सान्तर और निरन्तर च्यवते हैं परन्तु पृथ्वीकायिक आदि निरन्तर उत्पन्न होने वाले एकेन्द्रिय जीव निरन्तर ही च्यवते हैं।

गांगेय- "भगवन्! प्रवेशन कितने प्रकार के कहे हैं?"

महावीर- "गांगेय! प्रवेशन चार प्रकार के कहे हैं- (१) नैरयिक प्रवेशन, (२) तिर्यक् योनि प्रवेशन, (३) मनुष्य प्रवेशन, (४) देव प्रवेशन। उसके पश्चात् भगवान महावीर ने विभिन्न नैरयिकों के प्रवेशन के सम्बन्ध में विस्तृत सूचनाएं दीं।

गांगेय- "भगवन्! तिर्यंचयोनिक प्रवेशन कितने प्रकार का कहा है?"

महावीर- "गांगेय! पांच प्रकार का कहा है- एकेन्द्रिय योनिक प्रवेशनक यावत पंचेन्द्रिय योनिक प्रवेशनक। उसके पश्चात् भगवान महावीर ने विस्तृत रूप से उसके सम्बन्ध में वर्णन किया।"

गांगेय- "भगवन्! मनुष्य प्रवेशन कितने प्रकार का है?"

महावीर- "वह दो प्रकार का है- (१) सम्मूर्च्छिम मनुष्य प्रवेशनक, और (२) गर्भज मनुष्य प्रवेशनक।"

उसके बाद भगवान ने उसका विस्तार से विश्लेषण किया।

गांगेय- "भगवन्! देव प्रवेशनक कितने प्रकार का है?"

महावीर- "गांगेय! देव प्रवेशनक चार प्रकार का है- (१) भवनवासी देव प्रवेशनक (२) वाणव्यन्तर, (३) ज्योतिष्क,और (४) वैमानिक।